मृगनयनी

हिन्दी ADDA

पराग मांदले

मृगनयनी

उसे सीमा पसंद नहीं थी।

https://www.hindiadda.com/mriganayani/

क्योंकि सीमा बाँधती है।

उसे आकाश पसंद था।

क्योंकि वह मुक्त करता है।

वह मुक्त इसलिए कर पाता है क्योंकि वह स्वयं असीम होता है, अनंत होता है।

सबके सिर पर पसरा हुआ होता है।

वह भी सब पर छा जाना चाहती थी।

आकाश की तरह।

उसे बंधन पसंद नहीं थे।

उसे परिंदे पसंद थे।

उसे परिंदे इसलिए पसंद थे क्योंकि वे किसी बंधन को नहीं मानते।

यदि कोई उन्हें बंधनों में बाँध भी दे तो भी वे मुक्ति के लिए निरंतर छटपटाते रहते हैं।

यूँ तो आकाश की थाह कोई नहीं ले सकता।

मगर परिंदे अपने पंखों की शक्ति भर आकाश की थाह लेने की कोशिश जरूर करते हैं।

वह भी लेना चाहती थी अपने हौंसले की सीमा भर आकाश की थाह।

परिंदों की तरह।

उसे क्षुद्रता पसंद नहीं थी।

उसे विस्तार पसंद था।

उसे सागर पसंद था।

यूँ तो सागर असीम नहीं होता है। मगर वह गहरा होता है।

उसका विस्तार व्यापक होता है।

सागर को दृष्टि की सीमा में नहीं बाँधा जा सकता।

सागर के किनारे खड़े होकर देखो तो यह नहीं कहा जा सकता कि वह असीम नहीं है।

क्षितिज उसे सीमा में बाँधता-सा महसूस भर होता है।

मगर वह तो केवल दृष्टि का भ्रम होता है।

आकाश की गोद में खेलता सागर यूँ लगता है जैसे एक असीम के बीच में पसरा हो दूसरा असीम।

और फिर सागर की गहराइयों का छोर किसने नापा है आज तक?

सागर की गहराइयों में ऐसा कितना कुछ छुपा हुआ है जहाँ तक अभी तक न मनुष्य के कदम पहुँच सके हैं और न ही निगाहें।

वह अपने व्यक्तित्व को विस्तारित और गहन करना चाहती थी।

सागर की तरह।

उसे सपने पसंद थे।

क्योंकि सपने किसी सीमा में नहीं बँधते।

वह खूब सपने देखती थी।

उसे सपने देखना पसंद था।

मगर उसे सपनों को पूरे हो सकने वाले और पूरे न हो सकने वाले वर्गों में विभाजित किया जाना बिलकुल पसंद नहीं था।

सपनों को वर्गों में विभाजन का अर्थ होता है उन्हें किसी सीमा में बाँधने की कोशिश।

उसे सपनों को किसी तरह की सीमाओं में बाँधना पसंद नहीं था।

वह सोचती थी कि यदि मनुष्य असंभव-से लगने वाले सपने नहीं देखेगा तो जीवन में कभी असंभव-सी लगने वाली उपलब्धियाँ भी हासिल नहीं कर पाएगा।

असंभव-सी लगने वाली उपलब्धियों को हासिल करने के लिए जरूरी है कि इनसान पहले असंभव-से लगने वाले सपनों के अलौकिक संगीत में खो जाए।

वह हर असंभव को साकार करना चाहती थी, सपनों की तरह।

उसे संगीत बहुत पसंद था।

क्योंकि संगीत के तार आत्मा से शुरू हो कर परमात्मा तक जुड़ते हैं।

कहने वाले कहते हैं कि सारा संगीत सात स्वरों की सीमा में कैद है।

मगर वे लोग यह भूल जाते हैं कि इस आभासी सीमा के बावजूद संगीत में सैकड़ों मधुर रागों और उनकी लाखों मनभावन बंदिशों के सृजन की क्षमता है। और इस सिलसिले की अनंतता उसे अत्यधिक प्रभावित करती थी।

सुर, लय और ताल का मिलन जब स्वर्गीय आनंद के संसार में प्रवेश का द्वार बन जाता तो उसका मन-मयूर नाच उठता था।

उसे धीमे विष की तरह असर करने वाला संगीत पसंद नहीं था।

उसे ऐसा संगीत पसंद था जो तीर की तरह सीधे हृदय में प्रवेश कर जाए और अपना वर्चस्व जमा ले। सदा के लिए।

वह भी सारे संसार के हृदय को इसी तरह भेद कर उस में सदा के लिए अपना स्थान बना लेना चाहती थी।

उसे सारंगी बहुत पसंद थी।

उसे सारंगी शायद इसलिए पसंद थी क्योंकि सारंगी का स्वर तीर की तरह सीधे हृदय में प्रवेश करता था।

सारंगी का स्वर उसे लगता मानो किसी की पीड़ा में डूबी हुई चीत्कार हो।

वह जब भी सारंगी का स्वर सुनती तो उसे ऐसा महसूस होता मानो बजाने वाला सारंगी नहीं पीड़ा से भरा हुआ अपना हृदय बजा रहा है। हृदय के भीतर छुपे हुए अधूरे अरमानों का एक-एक तार छेड़ रहा है।

वह कई बार किसी सारंगी में समा जाती और समय के हाथ जब उस सारंगी को बजाते तो उसकी स्वर-लहरी लोगों के दिलों को भीतर तक चीर जाती और फिर ब्रह्मांड के दूसरे कोने तक गूँजती रहती।

वह शब्द बनकर ब्रह्मांड के कोने-कोने में फैल जाना चाहती थी।

उसे यात्राएँ पसंद थी।

उसे यात्राएँ इसलिए पसंद थीं क्योंकि स्वयं जीवन भी एक यात्रा है जो अनंत काल तक चलती रहती है।

मृत्यु एक अवस्था है जो जीवन के दो अध्यायों के बीच अल्पविराम का काम करती है।

विराम का अर्थ समाप्ति नहीं होता।

जीवन भी कभी समाप्त नहीं होता है।

और जीवन की यह यात्रा भी।

लाख तरह के रूप बदल लेने के बावजूद।

इसलिए उसे यात्राएँ खूब पसंद थीं।

हर रात वह यात्रा पर निकला करती थी।

कभी वह किसी परिंदे की तरह आकाश में उड़ती रहती।

निरंतर ऊपर की ओर।

पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति भी उसे बाँध नहीं पाती।

वह तब तक उड़ती रहती जब तक उड़ना संभव होता।

जब उसे लगता कि उसकी शक्ति अब चुकने लगी है तो वह असीम-अनंत आकाश में बिखरे सितारों में से किसी सितारे पर टँगा सपना तोड़ लेती और फिर लौट आती।

हर रात वह यात्रा पर निकला करती थी।

कभी वह किसी मछली की तरह सागर में तैरती रहती।

निरंतर सागर की अथाह गहराई की ओर।

किसी पनडुब्बी की तरह सागर का सीना चीरती हुई नीचे की ओर बढ़ती रहती वह।

तब तक जब तक कि उसे यह महसूस न होता कि अब उसके लिए और गहराई में जाना संभव नहीं है।

ऐसे में वह सागर की अतल गहराइयों में बिखरी सीपियों में सोए किसी सपने को उठा लेती और लौट आती।

हर रात वह यात्रा पर निकला करती थी।

जिस रात उसकी आकाश और सागर से लड़ाई हो जाती, उस रात वह उन दोनों से नाराज होकर हिमालय की ओर निकल पड़ती।

ऊँचे हिम शिखरों पर उसका आरोहण इतना सहज होता मानो अपने घर की सीढ़ियाँ चढ़ रहा हो कोई।

ऊँचे से ऊँचा पर्वत शिखर भी उसके कदमों के तले छोटा हो जाता।

चलते-चलते जब कभी वह थक जाती तो किसी हिमगुफा में प्रवेश कर कुछ देर को सुस्ता लेती और वापसी के समय उस गुफा की दीवारों पर जमे किसी सपने को निकाल लेती और लौट आती।

हर रात वह यात्रा पर निकला करती थी।

उसे सीमा पसंद नहीं थी।

इसलिए उसकी यात्राओं की भी कोई सीमा नहीं थी।

उसकी यात्राओं का कोई तय नियम भी नहीं था।

उसके लिए हर यात्रा नई होती थी और उस यात्रा के नियम भी हर बार बिलकुल नए होते थे।

मगर नए नियम होने का यह अर्थ कतई नहीं था कि उन नियमों का पालन करना उसके लिए अनिवार्य था।

उसे बंधन पसंद नहीं थे।

वह किसी भी तरह के नियमों में बँधना भी पसंद नहीं करती थी।

उसकी यात्राएँ भी किसी तरह के नियमों में नहीं बँधा करती थीं।

वह एक रात यात्रा पर निकलती और सुबह होने तक लौट आती मगर रात और सुबह के बीच के इस सफर में केवल एक रात ही नहीं गुजरती, कई बार कई-कई दिन गुजर जाते और कई बार कई-कई महीने। एक बार तो वह रात को यात्रा पर निकली और जब सुबह लौटी तो उस बीच दो साल बीत गए थे। और एक बार वह यात्रा पर निकली और सुबह को लौटी तो रात आगे बढ़ने की जगह एक साल पीछे लौट गई।

उसे बँधना पसंद नहीं था।

इसलिए वह कभी समय की सीमाओं में भी नहीं बँधी।

न कभी भूत और भविष्य की सीमाओं में।

और सच तो यह है कि कभी समय की भी यह हिम्मत नहीं हुई कि वह उसे अपनी सीमाओं में बाँधने का कोई प्रयास करे।

एक रात वह फिर यात्रा पर निकल पड़ी। उड़ती रही पंछी की तरह आसमान में।

उड़ते-उड़ते वह सदा की तरह धरती की आकर्षण-परिधि से बाहर निकल कर अंतरिक्ष में पहुँच गई।

उस रात न जाने क्या हुआ कि लगातार उड़ने के बाद भी उसे थकान का कोई एहसास नहीं हुआ।

दूर आसमान से जब उसने मुड़कर नीली पृथ्वी की ओर देखा तो उसे यह महसूस हुआ कि यदि सपनों का कोई रंग होता हो तो वह नीला ही होगा। नीली आँखों से नीली नींद में देखे गए किसी नीले सपने की तरह। अंतरिक्ष से वह बड़ी देर पृथ्वी को निहारती रही मगर लौटी नहीं। उस बार हर बार की तरह वह लौटी नहीं, बल्कि और आगे बढ़ गई।

उसकी इस यात्रा की दूरी को नापने वाला वहाँ कोई नहीं था।

उस दिन बड़ी देर बाद उसे यह अनुभव हुआ कि अब उसके लिए इस यात्रा को जारी रख पाना संभव नहीं है।

हमेशा की तरह लौटने के लिए उसने गहरी साँस लेकर अपनी शेष बची पूरी शक्ति को समेटा।

ठीक उसी क्षण उसे इस बात का ख्याल आया कि इस बार वह अंतरिक्ष में बहुत दूर तक निकल आई है। उसने पलट कर देखा, पीछे उसे असंख्य तारों की बारात दिखाई दी।

उसने सोचा, इसमें से पृथ्वी कौन-सी है? उसे नहीं पता था कि जहाँ तक वह आ गई थी, वहाँ से पृथ्वी कितनी दूर थी। न उसे यह पता था कि वह पृथ्वी तक फिर से लौटेगी कैसे। अंतरिक्ष में तो कोई पदचिह्न भी नहीं बनता, जिसके सहारे धीरे-धीरे वह लौट सकती। उसे लगा भूसे के ढेर से सूई खोज निकालने की कहावत असंख्य तारों की इस बारात में से पृथ्वी को खोज निकालने के मामले बिलकुल सटीक बैठती है। परेशान तो वह वैसे भी नहीं थी मगर अपने इस विचार से वह मुस्करा अवश्य उठी। तारों के इस ढेर में से पृथ्वी को खोज निकालना सचमुच लगभग असंभव था।

यूँ तो असंभव-से लगने वाले सपनों को देखना और उन्हें साकार करने का प्रयास करना उसे पसंद था। लेकिन उस समय पहली बार उसके भीतर असंभव को संभव कर सकने वाला सपना देखने की इच्छा जाग्रत नहीं हुई। भय की कोई लहर इसके बावजूद उसे छू नहीं पाई। उसने सोचा, यदि उसकी जीवन-यात्रा के इस अंक का विराम इस निःसीम अंतरिक्ष में लिखा है तो यही सही। उसने एक गहरी साँस ली, आँखें बंद कीं और अपने-आपको निःसीम अंतरिक्ष के हवाले कर दिया।

इसके बाद क्या हुआ, उसे पता नहीं चला। मगर जब उसकी चेतना लौटी तो उसे लगा जैसे वह एक लंबी और गहरी नींद से जागी है। उसकी आँखें अभी भी बंद थीं। उसे महसूस हुआ कि जिस बिछौने पर वह लेटी हुई है, उसमें हमेशा से कुछ अलग और कुछ ज्यादा मुलायमितता है। बड़ी देर तक वह उस कोमल, मुलायम और सुखद एहसास का अनुभव करती रही।

आखिर उसने आँखें खोलीं।

लगा कि उसके ठीक ऊपर एक विशाल गुलाबी छत पसरी हुई है।

कुछ क्षणों तक तो वह समझ ही नहीं पाई कि वह अब जाग गई है या फिर अभी भी नींद में है। उसकी आँखों के सामने जो दृश्य था, वह बस उसे अपलक देख रही थी।

फिर अचानक उसे इस बात का एहसास हुआ कि जिसे वह विशाल छत समझ रही है, वह दरअसल विस्तृत आकाश है। गुलाबी आकाश।

यह कैसे हो सकता है। एक पल को उसने सोचा। आकाश तो हमेशा नीला होता है, फिर इस समय वह गुलाबी कैसे दिखाई दे रहा है।

अचानक उसकी स्मृति पीछे दौड़ी। उसे स्मरण आया कि सुदूर अंतरिक्ष में भटक गई थी वह तो। थक गई थी बेइंतिहा। और थक कर उसने अंतरिक्ष की भूलभुलैया में खो जाने के लिए अपने आप को प्रस्तुत कर दिया था। फिर वह यह कहाँ और कैसे आ गई है? पृथ्वी तो नहीं लगती यह उसकी अपनी। कौन-सी जगह है यह?

जब कुछ उसकी समझ में नहीं आया तो उसने विचारों पर से अपना ध्यान हटाया। विचारों पर से ध्यान हटा तो तत्काल इस बात पर गया कि पास ही कहीं कोई सितार बजा रहा है। सितार के तारों की झंकार सुन कर उठ बैठी वह।

कुछ समय तक वह मंत्रमुग्ध उस स्वर-लहरी में खोई रही। कुछ क्षणों पश्चात उसकी आँखें स्वरों का पीछा करते हुए उनके उद्गम स्थल तक पहुँची। उसने देखा, उससे थोड़ी दूर कोई बैठा तन्मयता के साथ सितार बजा रहा था।

कौन है यह व्यक्ति, उसने सोचा। उसने ध्यान से देखा। एक बार फिर वह आश्चर्य में डूब गई। कितना विलक्षण व्यक्ति था वह। मानो कोई देवपुरुष। शुभ्र-श्वेत लंबा चोगा पहने उस व्यक्ति की लंबी दाढ़ी और कंधों पर बिखरे केश भी चाँदी की तरह धवल थे। किंतु उसका चेहरा किसी चौबीस-पच्चीस वर्ष के युवक-सा लग रहा था। अपूर्व तेज से दमकता। वह कुछ पलों तक अपलक उसे देखती रह गई।

सारा वातावरण गुलाबी आभा से दीप्त था। मानो सब कुछ गुलाब जल से नहाया हुआ हो। वैसी ही मंद सुगंध भी वातावरण में छायी हुई थी। अभिमंत्रित-सी वह उठ खड़ी हुई। उसने जैसे ही अपना कदम भूमि पर रखा, छन्न की आवाज के साथ सितार का कोई तार टूट गया। देवपुरुष ने अपनी आँखें खोलीं, उसे देखकर

मुस्कराया। फिर उसने कोमलता से सितार पर एक हाथ फेरा। वह यह देखकर आश्चर्य से भर उठी कि सितार का टूटा तार फिर से जुड़ गया।

वह मुस्कराते हुए बोला, 'बहुत नाजुक हैं इस सितार के तार, तुमने भूमि पर कदम रखा तो तुम्हारी पायल की झंकार भी सहन नहीं कर सके।' फिर वह बोला, 'वहाँ क्यों खड़ी हो, यहाँ आओ मृगनयनी!'

वह खिलखिलाई, 'मृगनयनी! मगर मैं तो आकांक्षा हूँ।'

उसने देखा, उसकी खिलखिलाहट प्रकाश पुंजों में परिवर्तित होकर सारे वातावरण में फैल गई थी।

'मैं जानता हूँ मृगनयनी।' वह देवपुरुष बोला, 'आकांक्षा ही तो हो तुम। जीवन की आकांक्षा। जीवन के सारे शुभ और सुंदर की आकांक्षा। मन-जीवन की संपूर्णता की आकांक्षा।'

देवपुरुष ने अपना हाथ बढ़ाया। वह बढ़ता हुआ उस तक चला आया। उसने काँपते हृदय से उस हाथ को थाम लिया और उसके सहारे धीरे-धीरे चलती हुई उस देवपुरुष तक पहुँची। देवपुरुष ने उसे अपने निकट बैठाया। फिर कहा, 'मैं जानता हूँ, तुम युगों-युगों से अधूरी मेरी आकांक्षा हो मृगनयनी। मगर आकांक्षा तो तुम तब बनी जब युगों पूर्व मुझसे अलग हुई। किंतु युगों पहले जब तुमने सबसे पहले विधाता के हाथों से आकार लिया था, उस समय तुम्हारे इन विशाल और चंचल नयनों को देखकर उसने तुम्हें सबसे पहला नाम जो दिया था, वह मृगनयनी ही था।'

'और जानती हो,' वह देवपुरुष हल्के-से हँसा, 'जब मैंने तुम्हें पहले-पहल देखा था तब मेरे हृदय में भी ठीक यही नाम उभरा था तुम्हारे लिए।'

'क्यों भला?'

'मैं भी तो उस विधाता का ही एक अंश हूँ मृगनयनी। उससे अलग विचार या बुद्धि मैं कहाँ से लाता? यह मैंने बाद में जाना मगर उस ईश्वर से अपनी एकरूपता के अनुभव का वह मेरा पहला ही अवसर था। तुम उस अनुभव की वजह बनी थी मृगनयनी। और फिर तुमने कभी दर्पण में अपने इन नयनों को देखा है? जीवन के सारे रंग इन दो आँखों में सिमट आए हैं। जब तुम अपने हृदय का सारा प्रेम समेटकर देखती हो तो लगता है दो चंचल मृगछौने नेत्रों के द्वार से हृदय में प्रवेश कर

अठखेलियाँ कर रहे हैं। कभी लगता है इन दो नयनों में जाने कितने सागर मचल रहे हैं जो कभी आनंद का रूप लेते हैं और कभी पीड़ा का...।'

देव पुरुष अभी बहुत कुछ कहना चाहता था, मगर रोक दिया आकांक्षा ने। बोली, 'आपकी बातें बहुत मनोहारी हैं, किंतु इन बातों से मिलने वाले रस से भी प्रबल है मेरी जिज्ञासा। यह जानने की जिज्ञासा कि आप कौन हैं, मैं कहाँ हूँ और यहाँ तक कैसे पहुँच गई?'

'इतने सारे प्रश्न एक साथ? मुस्कराया देव पुरुष। 'फिर भी मैं प्रयास करूँगा कि तुम्हारी हर जिज्ञासा का उपशमन हो सके। नीले ग्रह पृथ्वी से बहुत दूर यह एक छोटा-सा लोक है मृगनयनी, जिसे हम प्रेम लोक कहते हैं। इस ब्रह्मांड में जिन-जिन ग्रहों पर जीवन है, वहाँ के प्राणी जब प्रेम के सर्वोच्च स्तर पर पहुँच जाते हैं, अपने प्रिय और प्रेम से एकाकार हो जाते हैं तो मृत्यु के उपरांत इस लोक में आने के अधिकारी हो जाते हैं। इस लोक का कण-कण प्रेम में पगा हुआ है, इसीलिए गुलाबी आभा लिए हुए है। यहाँ रहते हुए प्राणी का प्रेम जब इतना परिपक्व हो जाता है कि वह अपने प्रिय को सर्वव्यापक परमात्मा का एक अंश समझकर उस परमात्मा के प्रेम में आकंठ डूब जाए तो फिर वह इस लोक से दूर सिद्धों के संसार में पहुँच जाता है।'

'प्रेम ही इस लोक की प्राण वायु है। यहाँ प्राणी को किसी और वस्तु की आवश्यकता नहीं रहती। यहाँ व्यक्ति का चेहरा उसके हृदय का दर्पण होता है। मैं यहाँ चार शताब्दियों से ज्यादा समय से हूँ, इसीलिए तुम मेरे केश और श्मश्रुओं को इतना धवल देख रही हो, किंतु मेरा चेहरा किसी नवयुवक का-सा इसलिए है क्योंकि मेरा हृदय अभी भी किसी नवयुवक के हृदय-सा ही युवा है और वैसे ही प्रेम और उमंग से भरा हुआ है।'

'चार शताब्दी पहले मैंने भी पृथ्वी पर ही आखिरी बार जन्म लिया था। उस समय मैंने तुमसे प्यार किया था मृगनयनी और इतना प्यार किया था कि अपने-आप को पूरी तरह से भूल ही गया था मैं। प्रेम के शिखर को छूकर मैं तो इस प्रेम लोक में आ गया मगर तुम वहीं रह गई। पिछली चार शताब्दियों से मैं इस लोक में तुम्हारी ही प्रतीक्षा कर रहा हूँ। तुम्हारी स्मृति में शायद मेरा कोई स्थान नहीं होगा मगर तुमसे मेरे हृदय के तार इस तरह जुड़े हुए हैं कि मैं पिछले चार सौ सालों से तुम्हारे एक-एक पल का साक्षी रहा हूँ। तुम्हारी हर साँस और हर धड़कन की खबर रही है मुझे। आज

जब तुम थक कर चूर हो गई और तुम्हारा क्लांत शरीर असीम अंतरिक्ष में भटक रहा था तो मैं ही तुम्हें यहाँ लेकर आ गया।'

एक पल को ठहरा देव पुरुष, फिर बोला, 'जानती हो मृगनयनी! इस लोक में आने वाली तुम पहली ऐसी इंसान हो जो बिना प्यार का सर्वोच्च शिखर छुए यहाँ पहुँच सकी है। मगर यहाँ ठहरना इतना आसान नहीं है। तुम इस लोक में प्रवेश के मामले में अपवाद सिद्ध हुई हो, किंतु यहाँ ठहरने के मामले में अपवाद नहीं हो सकती। यहाँ तुम केवल अतिथि हो और बहुत दिनों तक यहाँ ठहर नहीं पाओगी।'

मंत्रमुग्ध-सी सुन रही थी वह। जब देव पुरुष ने अपनी बात खत्म की तो वह बोली, 'कितना अद्भुत लगता है यह सब। और तुम्हारी यह कहानी भी उतनी ही अद्भुत है। वैसे एक बात तुम्हें बताऊँ...', फिर मुस्कराई थी वह, 'अपवाद मैं हमेशा ही रही हूँ। मैंने सदैव हर उस बात को संभव बनाने का प्रयास किया है जो औरों के लिए सर्वथा असंभव प्रतीत होती है। मैं सदा औरों से हटकर ही रही हूँ। किसी भी भीड़ से सर्वथा अलग। मैं हमेशा से यह मानती आई हूँ कि मैं सारे संसार में अपनी तरह की अकेली हूँ। मेरे जैसा कोई न मुझसे पहले कभी हुआ है न ही मेरे बाद कोई होगा। एकोहं द्वितीयोनास्ति न भूतो न भविष्यति।'

'तुम्हारी बात से इंकार नहीं करता मैं... मगर तुम्हारी यह आत्ममुग्धता ही प्रेम के सर्वोच्च शिखर को छूने से तुम्हें रोकती रही है अब तक। और जानती हो, इस आत्ममुग्धता की जड़ में तुम्हारा तीव्र अहंकार है।' देव पुरुष का स्वर शांत था।

इस बार वह जो खिलखिला कर हँसी, तो बड़ी देर तक हँसती रही। फिर कुछ संजीदा होकर बोली, 'अहंकार और आत्मविश्वास के बीच बहुत पतली रेखा होती है। मेरी दृष्टि में तो मैंने केवल एक सच को शब्द दिए हैं। संभव है तुम्हारे इस लोक में सत्य कथन को अहंकार का प्रदर्शन समझा जाता हो। वैसे मुझे एक बात बताओ, तुम इस बात का निर्णय किस तरह कर पाओगे कि जो मैं कह रही हूँ वह अहंकार के वशीभूत होकर कह रही हूँ या फिर यह मेरा सहज आत्मविश्वास है?'

'किंतु क्या वह आत्मविश्वास विचारणीय नहीं है जिससे किसी दूसरे को अहंकार की गंध आती हो**?'**

'किसी का अहंकार क्यों किसी दूसरे को खटकता है, क्या तुम यह नहीं जानते?' उसकी आँखें ही जैसे एक प्रश्नचिह्न बन गई थीं यह कहते हुए। एक बड़ा-सा प्रश्नचिह्न। देव पुरुष ने उसके प्रश्न का कोई उत्तर नहीं दिया। किंतु उसके चेहरे पर

अवश्य एक प्रश्न उभर आया था। उसने इस बात को महसूस किया तो स्वयं ही अपने प्रश्न का उत्तर दिया।

'मेरे आत्मविश्वास में तुम्हें अहंकार की अनुभूति तब तक नहीं हो सकती जब तक कि तुम्हारे अपने भीतर कोई अहंकार न हो। सच तो यह है कि केवल अहंकार ही अहंकार को पहचान सकता है।'

'मैं सहज ही तुम्हारी बात मान लेता मृगनयनी। हालाँकि तुम्हारी बातों से मेरा किसी तरह का विरोध भी नहीं है। किंतु एक बात मैं अवश्य तुम्हें कहना चाहता हूँ। तुम यह भूल रही हो कि तुम किस स्थान पर हो। यह प्रेम लोक है। यहाँ सामान्य रूप से आने का अधिकारी वही हो सकता है जिसने अपने प्रियतम के अस्तित्व में अपने अस्तित्व को विलीन कर लिया हो या फिर अपने प्रिय को अपने अस्तित्व का एक हिस्सा बना लिया हो। दोनों ही दशाओं में अस्तित्व सिर्फ एक का रहना है, स्वाभाविक है अहंकार भी किसी एक का ही रहेगा। मैं भी इस कसौटी पर खरा उतर कर ही यहाँ प्रवेश का अधिकारी बना हूँ। इसलिए इस बात की संभावना तो हो ही नहीं सकती कि तुम्हारी बातों में अहंकार की गंध महसूस करने के मूल में मेरा अहंकार हो।'

फिर एक बार खिलखिलाकर हँस पड़ी थी वह। 'मैंने पहले ही कहा था, यह स्थान और तुम्हारी बातें, दोनों ही बहुत अद्‌भुत और विचित्र हैं। मगर मैं भी कम विचित्र नहीं हूँ। मुझे इस बात से कोई विशेष प्रयोजन भी नहीं है कि मेरी बातों में अहंकार है या आत्मविश्वास। वह जो भी है मेरा है। और मुझे प्रिय है। विचित्र मान सकते हो मुझे, किंतु मैं ऐसी ही हूँ।'

'मैं जानता हूँ मृगनयनी।' देव पुरुष मुस्कराकर बोला, 'इसीलिए तो मैं तुमसे युगों-युगों से इतना प्रेम करता हूँ। और मैं यह चाहता हूँ कि तुम चाहे अपवादस्वरूप यहाँ आई हो, किंतु अब यहीं ठहर जाओ।'

'कैसी विचित्र बात है। तुम्हीं ने अभी कुछ क्षणों पूर्व यह कहा था कि मैं यहाँ अपवादस्वरूप आ तो गई हूँ किंतु मेरा यहाँ अधिक समय तक ठहरना संभव नहीं है।'

देव पुरुष चाहकर भी इस बात का अनुमान नहीं लगा सका कि उसकी इस बात में केवल जिज्ञासा है अथवा वहीं पर ठहरने की कामना भी है। वह बोला, 'हाँ मैंने कहा था। सामान्यतः यहाँ पर तुम्हारा अधिक समय तक ठहरना संभव नहीं है। मगर

जिस तरह तुम अपवादस्वरूप यहाँ आई हो, वैसे ही एक सूरत में हमेशा के लिए यहाँ ठहर भी सकती हो।'

'वह किस तरह?' चहककर पूछा उसने। देव पुरुष का द्वंद्व अभी तक कायम था। जिज्ञासा अथवा कामना?

'यह प्रेम का संसार है मृगनयनी। यहाँ तुम प्रेम करके ही हमेशा के लिए रह सकती हो।'

'प्रेम!' फिर खिलखिलाई थी वह, उसकी आँखों में शरारत चमकने लगी थी। 'किससे प्रेम करना होगा मुझे? तुमसे?'

मुस्करा दिया देव पुरुष, 'यदि ऐसा हो सका तो यह मेरे लिए युगों पुराने स्वप्न के साकार होने की तरह होगा मृगनयनी। किंतु यहाँ ठहरने के लिए तुम्हें मुझसे पहले मेरे इस सितार से प्रेम करना होगा।'

'सितार से प्रेम**!**' कुछ आश्चर्य और कुछ उलझन के स्वर में पूछा था उसने।

'हाँ! यह सितार कोई सामान्य सितार नहीं है मृगनयनी। यह प्रेम की मेरी शताब्दियों की आराधना से प्राप्त एक वरदान है। इस सितार को बजाने में जो एक बार प्रवीण हो जाता है, उसके लिए इस लोक को त्यागकर सिद्धों के लोक में जाने का अवसर उपलब्ध हो जाता है। यदि तुम यह सितार बजाना सीखने के लिए मेरा शिष्यत्व ग्रहण कर लो तो तुम यहाँ रह सकती हो।'

इस बार बड़ी देर तक हँसती रही वह। देव पुरुष आश्चर्य से उसकी ओर देखता रहा। बड़ी देर तक हँसने के बाद जब वह शांत हुई तो उसने कहा, 'मैं यह समझ नहीं पा रही हूँ देव पुरुष कि तुम चाहते क्या हो। मेरा प्रेम या मेरी श्रद्धा?'

'मिल सके तो दोनों ही।' देव पुरुष ने कहा। 'वैसे क्या तुम यह जानती हो कि प्रेम ही जब परिपक्व होता है तो श्रद्धा हो जाता है।'

'होता होगा। किंतु इसमें प्रेम के रूप में परिवर्तन तो अवश्यंभावी है न। कली खिलकर पुष्प का रूप ले लेती है किंतु पुष्प हो जाने पर कली का अस्तित्व कहाँ रह जाता है? वह पुष्प के रूप में परिवर्तित हो जाती है। क्या कोई कली, अपने अस्तित्व को कायम रखते हुए पुष्प हो सकती है?'

'तुम्हारी बात अपनी जगह पर सत्य है किंतु मैं यह नहीं समझ पा रहा हूँ कि यह सब कहने के पीछे तुम्हारा अभिप्राय क्या है।'

'बहुत साधारण-सी बात है। तुम्हारी मूल आकांक्षा तो मेरा प्रेम पाने की है। तुम स्वयं कहते हो कि तुम युगों से मेरे प्रेमी रहे हो। तुम्हारा यह प्रेम, मुझे किसी न किसी रूप में पाना या निरंतर अपनी आँखों के समक्ष मुझे रखना चाहता है। इस आकांक्षा को तुम मेरा गुरु बनकर पूरा करना चाहते हो। किंतु मुझे यह स्वीकार नहीं है। संभव है मेरा जीवन दर्शन तुमसे बहुत अलग हो, किंतु मेरे लिए एक ही समय में तुम्हारी प्रेयसी और तुम्हारी शिष्या बनना संभव नहीं है। यदि मैं तुम्हें गुरु के रूप में देखूँगी तो तुम्हारे ऊपर श्रद्धा तो करूँगी मगर एक प्रेयसी की तरह तुमसे प्रेम नहीं कर सकूँगी। मैं जानती हूँ, ऐसा तुम कभी नहीं चाहोगे। मैं केवल यह नहीं जानती कि तुम मेरे साथ एक प्रेमी और एक गुरु - ये दोनों दायित्व एक साथ किस तरह निभा सकोगे।'

'किंतु यदि तुम मेरी शिष्या बनना स्वीकार नहीं करोगी तो इस लोक में अधिक समय तक ठहर भी नहीं सकोगी।' कुछ पीड़ा, कुछ निराशा के साथ कहा था देव पुरुष ने। 'ऐसा कोई दूसरा उपाय नहीं है जो तुम्हें यहाँ रहने की सुविधा प्रदान कर सके।'

वह मुस्करा कर बोली, 'बहुत अद्भुत है यह लोक। किसी सपने के समान। किंतु सच कहूँ तो मैं यहाँ ठहरना नहीं चाहती।'

'क्यों?' आश्चर्य के सागर में डूब गया था देव पुरुष।

'तुम्हीं ने तो कहा था कुछ देर पहले कि जो प्रेम का सर्वोच्च शिखर छू लेता है, वही यहाँ आने का अधिकारी होता है। इसमें संदेह नहीं कि किसी दिन मैं भी इस लोक में आने का अधिकार प्राप्त करना चाहूँगी, किंतु इसके लिए किसी चोर रास्ते को अपनाना मुझे स्वीकार नहीं है।' अभिमान से दमक उठा था उसका चेहरा।

'अच्छा एक बात बताओ, क्या तुम्हें यह लगता है कि मेरा प्रेम कभी उस शिखर तक नहीं पहुँच सकेगा कि मैं स्वाभाविक रूप से यहाँ आने और यहाँ पर रहने की अधिकारी बन सकूँ?'

'मैंने ऐसा तो नहीं कहा है मृगनयनी!' देव पुरुष ने कहा। 'यह आशा न होती मुझे तो इतने युगों से मैं तुम्हारी यहाँ रहकर प्रतीक्षा ही क्यों करता भला?'

'तब ठीक है। तुमने चार सदियों तक मेरी प्रतीक्षा की है तो कुछ समय और सही। और सच कहूँ तो मेरी आँखें अभी भी पृथ्वी के सतरंगी प्रेम से ही अभिभूत हैं। यहाँ तो ऐसा प्रतीत होता है जैसे प्रेम एकरंगा है। एक सीधी रेखा में चलने की तरह। पृथ्वी जितने रंगों से भरपूर है, उतना ही विविध रंगों से भरा है वहाँ का प्रेम भी। उसमें अश्रु भी हैं, आनंद भी, विरह भी, मिलन भी, प्रतीक्षा भी, कठिनाइयाँ भी, उमंग भी और बाधाएँ भी। क्या नहीं है उसमें! सच तो यह है कि मैं अभी उसे पूरी तरह से जी ही नहीं पाई हूँ। मैं उसके हर रंग का, हर रूप का साक्षात्कार करना चाहती हूँ। मैं उसमें पूरी तरह से डूब कर उसे जीना चाहती हूँ। और ऐसा वहीं संभव है। नीले सपनों से भरी नीली पृथ्वी पर।'

अपनी दोनों हथेलियों में उसका चेहरा इस तरह थामा देव पुरुष ने जैसे कोई कमल सहेजा हो। बहुत हौले से उसके माथे को चूमकर बोला देव पुरुष, 'कामना अपनी जगह है किंतु संभवतः अभी मेरी प्रतीक्षा की अवधि समाप्त नहीं हुई है। चलो मृगनयनी, तुम्हें तुम्हारे संसार तक छोड़ आऊँ।'

'इतनी शीघ्रता!' शरारत से मुस्कराई वह।

'हाँ, ताकि तुम शीघ्र यहाँ लौट सको।'

'यह तो भविष्य की कोख में छुपा हुआ है कि अब कब होगी यहाँ मेरी वापसी। भविष्य की कौन कह सकता है। किंतु वर्तमान मेरे लिए एक तीव्र जिज्ञासा से परिपूर्ण है।' चंचल हो गए थे उसके दोनों नयन।

'कैसी जिज्ञासा मृगनयनी! क्या जानना चाहती हो तुम?'

'अभी कुछ देर पहले तुमने कहा कि इस सितार को बजाने में जो एक बार प्रवीण हो जाता है, उसके लिए इस लोक को त्यागकर सिद्धों के लोक में जाने का अवसर उपलब्ध हो जाता है।'

'हाँ मृगनयनी! सत्य ही कहा था मैंने।'

'तो क्या जो व्यक्ति दूसरों को यह सितार बजाना सिखाने की क्षमता रखता है, वह स्वयं इसमें प्रवीण नहीं है? और यदि है तो फिर अभी तक इसी लोक में क्यों है?'

खिलखिलाकर हँस पड़ा देव पुरुष। 'तुम सचमुच अभी तक वैसी ही हो मृगनयनी। जहाँ तक तुम्हारी जिज्ञासा का प्रश्न है, इस लोक में मैं स्वेच्छा से रह रहा हूँ।'

'किंतु क्यों?'

'अभी भी नहीं समझी पगली! मैं केवल तुम्हारे लिए यहाँ ठहरा हुआ हूँ। तुम्हारे प्रति मेरे हृदय का अनंत प्रेम मुझे तब तक यहाँ से विदा लेने की अनुमति नहीं देता, जब तक तुम स्वयं प्रेम के सर्वोच्च शिखर को छू कर इस लोक में न आ जाओ।'

उसने मानो अपने हृदय का सारा प्रेम अपने दोनों नयनों में समेट लिया था। न जाने कहाँ से उस प्रेम के संग-संग पानी की एक हल्की-सी परत भी उसके नयनों में फिसल आई थी। उसने बहुत गहरी निगाहों से देव पुरुष की ओर देखा। देव पुरुष ने कुछ कहा नहीं, केवल अपना हाथ उसकी ओर बढ़ाया। हाथ थामकर उठ खड़ी हुई वह।

'तुम्हारे ये मृगनयन', कहा देव पुरुष ने और बड़ी कोमलता से उसकी आँखों पर हाथ फेरा। उसने बंद कर ली पलकें अपनी। उसे लगा एक बार फिर वह अंतरिक्ष की लहरों पर तैर रही है। बहुत देर बाद जब उसने आँखें खोलीं तो देखा उसके सपनों का संसार नीली पृथ्वी ठीक सामने थी। उसने आस-पास देखा, देव पुरुष कहीं नहीं था। क्या यह भी एक स्वप्न था? उसने सोचा। किंतु अपने माथे पर उसके अधरों का कंपन और अपनी पलकों पर उसकी हथेली की छुअन को अब भी अनुभव कर रही थी वह।

उस रात अंततः वह लौट आई थी। गुलाबी लोक से नीली पृथ्वी पर। अगली रात फिर किसी यात्रा पर निकलने के लिए।

यात्रा मानो उसके जीवन का दूसरा नाम था।

और उसका जीवन था, मानो अंतहीन यात्रा कोई। अनंत की। असीम की।

उसे सीमा पसंद नहीं थी।

उसे बंधन पसंद नहीं थे।

उसे प्रेम पसंद था। मगर प्रेम की भला कोई सीमा होती है?